गुरनायब सिंह

बनाम

पंजाब राज्य

(आपराधिक अपील संख्या 744/2013)

10 मई, 2013

(के.एस. राधाकृष्णन् एवं दीपक मिश्रा, जे.जे.**)**

भारत का संविधान**, 1950**

अनुच्छेद-136 का दायरा- अभिनिर्धारितः जब अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा कोई निष्कर्ष निकाला जाता है जो स्पष्ट रूप से गलत है और अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है, तो उच्चतम न्यायालय, अनुच्छेद 136 के तहत शक्ति का प्रयाग करते हुये साक्ष्य का पुर्नमूल्यांकन कर सकता है और हस्तक्षेप कर सकता है।

दंड संहिता, 1860:

धारा 304-बी, धारा 306 सपठित धारा 498-एः क्रूरता-आत्महत्या के लिये दुष्प्रेरण-एक युवा दुल्हन की उसके वैवाहिक घर में मौत-दोषसिद्धि और अधीनस्थ न्यायालय द्वारा धारा 304-बी के तहत 7 वर्ष के कठोर कारावास की सजा-अभिनिर्धारित-विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च

न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के गवाहों की साक्ष्य को स्वीकार कर लिया है कि दहेज की मांग की गयी थी-लेकिन, उनके साक्ष्य की जांच से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने केवल ऐसा बयान दिया है कि आरोपी व्यक्ति दहेज से संतुष्ट नहीं थे और दुल्हन से बतायी गयी राषि 50,000/- रूपये लाने के लिये कह रहे थे-इस प्रकार अधूरे सबूतों के आधार पर, इस निष्कर्ष से सहमत होना मुष्किल है कि आरोपी पति द्वारा दहेज की मांग की गयी थी और ऐसी मांग के कारण उत्पीड़न किया गया था-इस संबंध में निष्कर्ष कुछ पूर्व धारणाओं पर आधारित है-हालांकि, यह साक्ष्य के रूप में सामने आया है कि सास और पति द्वारा दुर्व्यवहार किया गया था-वधू बीस वर्ष की थी-उसे कुछ अवसरों पर वैवाहिक घर से बाहर निकाल दिया गया था-इस तथ्य को संदेह से परे स्थापित किया गया है-अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य पर विचार करते हुये, यह एक ऐसा मामला है जहां वधू के साथ पूरी तरह से क्रूरता के साथ असंवेदनषील व्यवहार किया गया और उसे परेषान किया गया, जिसके कारण उसने अपने जीवन को समाप्त कर दिया।

धारा 304-बी, धारा-306 सपठित धारा-498 ए-अभिनिर्धारितः हालांकि अभी तक धारा 306 के तहत आरोप तय नहीं किया गया है, लेकिन यह स्पष्ट है कि अभियुक्तों को पता था कि वे आईपीसी की धारा 304-बी के तहत आरोप जहर देने का नहीं बल्कि दहेज की मांग और उत्पीड़न के कारण मृत्तका द्वारा जहर खाने से संबंधित है-यह धारा-306 जो वधू को

आत्महत्या करने के लिये उकसाने हेतु धारा 498-ए के खंड (ए) के संदर्भ में है, की तुलना में बड़ा अपराध है-इस प्रकार धारा 306 के तहत अपराध की मूल सामग्री अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित की गयी है क्योंकि मृत्यु असामान्य परिस्थितियों में सात साल के भीतर हुयी है और मृत्तका के साथ मानसिक क्रूरता की गयी थी-तदनुसार, धारा 304-बी को धारा 306 के तहत बदल दिया गया है-चूंकि आरोपी ने लगभग पांच साल हिरासत में बिताये हैं, सजा पहले से ही बितायी गयी अवधि तक पर्याप्त है-आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 313

<u>आपराधिक विचारण</u>

मुकदमें का संचालन-स्थगन-अभिनिर्धारित: एक आपराधिक विचारण की अपनी गंभीरता और शुचिता होती है-विचारण न्यायालय अपने मस्तिष्क में वैधानिक प्रावधानों और उच्चतम न्यायालय द्वारा की गयी उनकी व्याख्या को ध्यान में रखें-जब एक विचारण हो रहा हो तो पक्षकारों के अधिवक्ता पर नियंत्रण किया जाना चाहिये, उन्हें मूकदर्षक नहीं बनना चाहिये-उन्हें, उनकी निगरानी की आवष्यकता है-इसके अलावा, आपराधिक न्याय प्रदान करना न केवल बेंच का विषय है, बल्कि बार का भी विषय है-न्याय प्रषासन तब प्रभावित करता है जब बेंच और बार अपने कर्त्तव्यों को पूरी ईमानदारी से निभाएं-एक वकील मामले को टालने के लिये हथकंडों का सहारा लेकर विचारण की निष्पक्षता में किसी भी तरह का अनादर नहीं कर

सकता। हस्तगत मामले में, विचारण बेहद अव्यवस्थित और खण्डों में किया गया था-गवाहों के प्रतिप्ररीक्षण को बिना किसी विषेष कारण लिखे स्थगित किया गया और लंबी पेषियां दी गयी-अदालत ने मुकदमें के संचालन के तरीके के बारे में अपनी चिंता व्यक्त की-न्याय का प्रषासन-

आपराधिक न्याय-आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973। धारा 309-अभिभाषकगण।

अपीलकर्ता, उसकी माता और उसके भाई पर आईपीसी की धारा 304-बी के तहत अपराध करने के लिये मुकदमा चलाया गया था, इस आरोप पर कि अपीलकर्ता की पत्नी, युवा दुल्हन को आरोपी द्वारा दहेज के लिये इतना पेरषान और प्रताड़ित किया गया था कि उसने कीटनाषक खाकर आत्महत्या कर ली। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में जहर खाने से मौत की पुष्टि हुयी है। विचारण न्यायालय ने तीनों आरोपियों को आईपीसी की धारा 304-बी के तहत दोषी ठहराया और उनमें से प्रत्येक को 7 साल की सश्रम कारावास और 10,000/- रूपये के जुर्माने की सजा सुनायी। अभियुक्तों ने अपनी सजा के खिलाफ अपील दायर की जबकि परिवादी ने सजा बढ़ाने की मांग करते हुये एक आपराधिक पुर्नरीक्षण याचिका दायर की। अपीलकर्ता की माता की अपील लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गयी और उसके भाई को उच्च न्यायालय ने बरी कर दिया। हांलाकि, अपीलकर्ता की दोषसिद्धि की पुष्टि की गयी, लेकिन जुर्माना रद्द कर दिया गया।

हस्तगत अपील में, न्यायालय के समक्ष विचारणीय प्रष्न यह थाः क्या मृत्तका को दहेज की मांग के संबंध में उसे दिये गये उत्पीड़न के कारण आत्महत्या करने के लिये दुष्प्रेरित किया गया था।

न्यायालय ने अपील को आंषिक रूप से स्वीकार करते हुये अभिनिर्धारित किया-

1.1 जब अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा कोई निष्कर्ष निकाला जाता है जो स्पष्ट रूप से गलत है और अभिलेख पर उपस्थित साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है, तो उच्चतम न्यायालय, अनुच्छेद 136 के तहत शक्ति का प्रयाग करते हुये साक्ष्य का पुर्नमूल्यांकन कर सकता है और हस्तक्षेप कर सकता है। (पैरा 16) (578 डी-ई)

अलामेलु बनाम राज्य 2011 (2) एससीआर 147 2011 (2) एससीसी 385, हेज इंडिया (पी) लिमिटेड बनाम राजय उत्तर प्रदेष 2012 (3) एससीआर 898 2012 (5) एससीसी 443, और विष्वनाथ अग्रवाल नाम सरला विष्वनाथ अग्रवाल 2012 (7) एससीसी 607, 2012 (7) एससीसी 288 विष्वास किया गया।

1.2 विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने भी भाई (पीडब्ल्यू-1), पिता (पीडब्ल्यू-4) और गांव के नंबरदार (पीडब्ल्यू-5) के साक्ष्य को स्वीकार कर लिया कि दहेज की मांग थी। हालांकि, पीडब्ल्यू-1 ने स्पष्ट रूप से केवल यह बयान दिया कि आरोपी व्यक्ति दहेज से संतुष्ट

नहीं थे और उसकी बहन से 50,000/- रूपये लाने के लिये कह रहे थे। पीडब्ल्यू-4 और 5 की गवाही भी ऐसी ही है और गवाहों द्वारा और कुछ नहीं कहा गया है। इस प्रकार इस तरह के अधूरे सबूतों के आधार पर, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, इस निष्कर्ष से सहमत होना मुष्किल है कि आरोपी-पति द्वारा दहेज की मांग की गयी थी और उत्पीड़न ऐसी मांग से संबंधित था। यह निष्कर्ष कुछ पूर्व धारणों पर आधारित है। (पैरा 6) (577-जी-एच, 578-डीए-डी)

सतवीर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य 2001 (3) पूरक। एससी आर 353 2001 (8) एससीसी 633, और हीरालाल और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी सरकार), दिल्ली 2003 (1) सप्लीमेन्ट्री। एससीआर 734 2003 (8) एससीसी 80-संदर्भित।

1.3. हालांकि**,** आईपीसी की धारा 498-ए किसी महिला के पति या पति के रिष्तेदार द्वारा उसके साथ क्रूरता करने से संबंधित है। धारा 498**-**ए के स्पष्टीकरण का खंड **(**ए**)** क्रूरता को परिभाषित करता है जिसका अर्थ है कोई भी जानबूझकर किया गया आचरण जो ऐसी प्रकृति का हो जिससे महिला को आत्महत्या करने के लिये दुष्प्रेरित करने की संभावना हो। खंड **(**ए**)** के दायरे में मानसिक क्रूरता भी ली जा सकती है। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि पारिवारिक जीवन में मतभेद**,** झगड़े**,** गलतफहमियाँ और आषंकाएं हो सकती हैं लेकिन यह स्तर ही है जो इसे

मानसिक क्रूरता के स्तर तक ले जाता है। साक्ष्य में यह बात सामने आई कि सास और पति ने दुर्व्यवहार किया था। वधू की उम्र लगभग बीस वर्ष थी। कुछ अवसरों पर उसे वैवाहिक घर से बाहर कर दिया गया। यह पहलू संदेह से परे स्थापित हो चुका है। अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को ध्यान में रखते हुये, यह एक ऐसा मामला है जहां वधू के साथ पूरी तरह से असंवेदनषील व्यवहार किया गया और प्रताड़ित किया गया। बचाव पक्ष ने यह साबित करने की कोषिष की थी कि वह अवसाद से पीड़ित थी और इसी अवसाद के कारण उसने आत्महत्या की। बचाव पक्ष द्वारा उद्धृत डॉक्टरों की गवाही को विचारण न्यायालय के साथ साथ उच्च न्यायालय ने भी स्वीकार नहीं किया। वे रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री लाने में सक्षम नहीं हुये कि वह ऐसे अवसाद से पीड़ित थी जो उसे आत्महत्या करने के लिये मजबूर कर सकता था। उक्त गवाहों के साक्ष्यों पर गौर करने पर, इस स्तर पर निकाला गया निष्कर्ष बिल्कुल त्रुटिहीन है। उसी के मद्देनजर रिकॉर्ड पर लाये गये सबूत कि वधू के साथ क्रूरता का व्यवहार किया गया और उसे परेषान किया गया, उसे विष्वसनीयता दी जानी चाहिये। (पैरा 17-18) (578-एफ, 579-ए-सी और डी-एफ, 580-बी-सी)

2.1. इसमें कोई विवाद नहीं है कि आईपीसी की धारा 306 के तहत अपराध के लिये कोई आरोप तय नहीं किया गया था। हालांकि जो प्रष्न सीआरपीसी की धारा 313 के तहत रखा गया है, उससे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अभियुक्तों को पता था कि वे आईपीसी की धारा 304-बी के तहत

आरोप का सामना कर रहे थे, जो जहर देने से नहीं बल्कि जहर के सेवन से संबंधित था। दहेज की मांग और प्रताड़ना के कारण मौत जो धारा 498-ए आईपीसी के खंड (ए) के संदर्भ में वधू को आत्महत्या के लिये उकसाने से संबंधित है, आईपीसी की धारा 306 की तुलना में यह बड़ा अपराध है (पैरा 19) (580-डी-ई)

गुरबचन सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1957 एससी 623, शमन साहब एम. मुल्तानी बनाम कामताका राज्य 2001 (1) एससीआर 514-2001 (2) एससीसी 577, नरविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य 2011 (1) एससीआर 110-2011 (2) एससीसी 47, के. प्रेमा एस. राव और दूसरा बनाम पडला श्रीनिवास राव और अन्य 2002 (3) सप्लीमेन्ट्री। एससीआर 339 2003 (1) एससीसी 217 पर विष्वास किया गया।

2.2. मौजूदा मामले में, आईपीसी की धारा 306 के तहत अपराध की मूल बातें अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित की गयी हैं क्योंकि मौत असामान्य परिस्थिति में सात वर्ष के भीतर हुयी है और मृत्तका के साथ मानसिक क्रूरता की गयी थी। इस प्रकार आईपीसी की धारा 304-बी के तहत दोषसिद्धि को आईपीसी की धारा 306 के तहत परिवर्तित कर दिया जाता है। चूंकि अभियुक्त ने लगभग पांच साल हिरासत में बिताये हैं, इसीलिये सजा पहले से बितायी गयी अवधि तक ही सीमित है। (पैरा 23) (582-एफ-जी)

आपराधिक मुकदमें का संचालनः

3.1.एक आपराधिक मुकदमें की अपनी गंभीरता और शुचिता होती है। मौजूद मामले में, जिस तरह से सुनवायी की गयी है, वह बेहद परेषान करने वाले परिदृष्य को दर्षाता है। जैसा कि रिकॉर्ड से पता चलता है, हस्तगत मामले में, विचारण बेहद अव्यवस्थित और खण्डों में किया गया था। गवाहों के प्रतिप्ररीक्षण को बिना किसी विषेष कारण लिखे स्थगित किया गया और लंबी पेषियां दी गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि विधि के आदेष और इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर व्यक्त किये गये विचारों को पूरी तरह से ताक पर रखा गया है। आपराधिक न्याय की व्यवस्था विचारण न्यायालय पर कार्यवाही पर नियंत्रण रखने का भारी बोझ डालता है। इसे उचित आधार पर रखा जाना चाहिये और इसे पार्टियों या उनके वकील की सनक और इच्छा पर नहीं छोड़ा जा सकता है। (पैरा 24 और 27) (583-ए-सी, 584-जी-एच)

अंबिका प्रसाद और अन्य बनाम दिल्ली प्रषासन, दिल्ली 2000 (1) एससीआर 342-2000 एआईआर 718, यूपी राज्य बनाम शंभूनाथ सिंह और अन्य 2001 (2) एससीआर 854-2001 (4) एससीसी 667, मो. खालिद बनाम पष्चिम बंगाल राज्य 2002 (2) सप्लीमेन्ट्री। एससीआर 31-2002 (7) एससीसी 334, अकील उर्फ जावेद बनाम दिल्ली राज्य 2012 (11) स्केल 709-पर विस्वास किया गया।

तलब हाजी हुसैन बनाम मधुकर पुरषोत्तम मोण्डकर और अन्य 1958 एससीआर 1226 -एआईआर 1958 एससी 376, कृष्णन और अन्य बनाम कृष्णावेनी और अन्य एआईआर 1997 एससी 987-1997 (1) एससीआर 511, स्वर्ण सिंह बनाम पंजाब राज्य 2000 (3) एससीआर 572 एआईआर 2000 एससी 2017-संदर्भित।

3.2 यह दोहराया जाता है कि विचारण न्यायालय अपने मस्तिष्क में वैधानिक प्रावधानों और इस न्यायालय द्वारा उनकी की गयी व्याख्या को ध्यान में रखें-जब एक विचारण हो रहा हो तो पक्षकारों के अधिवक्ता पर नियंत्रण किया जाना चाहिये, उन्हें मूकदर्षक नहीं बनना चाहिये-उन्हें, उनकी निगरानी की आवष्यकता है। वे अपनी जिम्मेदारी से भाग नहीं सकते। यह ध्यान में रखना चाहिये कि जमीनी स्तर पर आपराधिक न्याय की पूर्ण व्यवस्था इस बात पर निर्भर है कि विचारण कैसे किया गया है। यह कहने के लिये कोई विषेष जोर देने की आवष्यकता नहीं है कि आपराधिक न्याय का वितरण न केवल बेंच की चिंता है बल्कि बार की चिंता भी है। न्याय का प्रषासन तब अपनी शुचिता को दर्षाता है, जब बेंच और बार अपने कर्त्तव्यों को अत्यधिक ईमानदारी से करते हैं। एक वकील मामले को टालने के लिये हथकंडों का सहारा लेकर विचारण की निष्पक्षता में किसी भी तरह का अनादर नहीं कर सकता। यह अदालत हस्तगत मामले में जिस प्रकार से विचारण किया गया है, उस पर अपनी पीड़ा, व्यथा और चिंता के बारे में व्यक्त करती है। (पैरा 34) (588-बी-ई)

केस लॉ संदर्भः

2001(3) आपूर्ति। एससीआर 353 को संदर्भित किया गया। पैरा 12

2003(1) आपूर्ति। एससीआर 734 को संदर्भित किया गया। पैरा 15

2011(2) एससीआर 147 पर भरोसा किया गया। पैरा 16

2012(3) एससीआर 898 पर भरोसा किया गया। पैरा 16

2012(7) एससीआर 607 पर भरोसा किया गया। पैरा 16

एयर 1957 एससी 623 पर भरोसा किया गया। पैरा 19

2001(1) एससीआर 514 पर भरोसा किया गया। पैरा 20

2011 एससीआर 110 पर भरोसा किया गया। पैरा 21

2002(3) आपूर्ति। एससीआर 339 पर भरोसा किया गया। पैरा 22

1958 एससीआर 1226 को संदर्भित किया गया। पैरा 24

1997(1) एससीआर 511 करने के लिये भेजा पैरा 25

2000(3) एससीआर 572 करने के लिये भेजा। पैरा 26

2000(1) एससीआर 342 पर भरोसा किया। पैरा 28

2001(2) एससीआर 854 पर भरोसा किया। पैरा 29

2002(2) पूरक। एससीआर 31 पर भरोसा किया। पैरा 32

2012(11) स्केल 709 पर भरोसा किया। पैरा 33

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारः आपराधिक अपील संख्या 744/2013

उच्च न्यायालय पंजाब और हरियाणा चंडीगढ़ के आपराधिक अपील संख्या 1472/2001 में निर्णय और आदेश दिनांकित 15.11.2011 से।

अभय कुमार, प्रदीप सिंह मीरपुर, यू.पी. सिंह, नीतू जैन- अपीलकर्ता की ओर से।

वी. मधुकर एएजी, सराजिता माथुर, कुलदीप सिंह-प्रतिवादी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया।

दीपक मिश्रा, जे.

1. याचिका स्वीकार।

2. अपने वैवाहिक घर में वधू का सम्मान विवाह की गंभीरता और पवित्रता की महिमा को दर्षाता है, एक सभ्य समाज की संवेदनषीलता को दर्षाता है और अंततः यह वैवाहिक आनंद के सपने देखने वाली उसकी आकांक्षाओं का प्रतीक भी है, लेकिन कभी-कभी कई घरों में पति, ससुराल वालों और रिष्तेदारों द्वारा दुल्हनों के साथ जिस तरह का व्यवहार किया जाता है उससे समाज में भावनात्मक स्तब्धता की भावना पैदा होती है। यह बेहद शर्म और गंभीर चिंता का विषय है कि दुल्हनों को जला दिया जाता है या शारीरिक और मानसिक यातना देकर उनकी जीवन लीला को

समाप्त कर दिया जाता है। दहेज की मांग और अतृप्त लालच और कभी-कभी, बिना क्रूरता और उत्पीड़न के कारण दहेज की मांग नवोदित दुल्हनों के साथ पूरी तरह से असंवेदनषील व्यवहार होता है, जिससे उनकी जीने की इच्छा को नष्ट होकर उन्हें आत्महत्या जो जीवन का क्रूर आत्म-अपमान है, के लिये मजबूर किया जाता है।

3. अमरजीत कौर, एक नवोदित महिला लगभग दूसरे स्तर की, एक किसान की बेटी, ने वर्ष 1996 के आरंभ में अपीलकर्ता के साथ विवाह किया। विवाह के समय, सामाजिक रीति-रिवाजों के अनुसार उपहार दिये गये थे। जैसा कि अभियोजन पक्ष का आरोप है कि शादी के कुछ समय बाद पति और उसके परिवार द्वारा उसके माता-पिता से 50,000/- रूपये के दहेज की मांग की गयी जिसे उनकी वित्तीय स्थिति के कारण पूरा नहीं किया जा सका। इस कारण वैवाहिक घर उदासीनता और उत्पीड़न का अड्डा बन गया। उसके दिल में संजाये सपनों को चकनाचूर करते हुये उसे कई बार अपने पति के घर से निकाल दिया गया और उसे केवल तभी वापस लौटने के लिये कहा गया, जब वह अपने माता पिता से 50,000/- रूपये की राषि ला सके। 18.07.1998 को मृत्तका के भाई गुरलाब सिंह ने साहस जुटाया और उम्मीद की कि उसकी बहन के साथ स्नेह से व्यवहार किया जायेगा, वह उसे उसके वैवाहिक घर ले गया और पति और उसकी मां से उसे रखने का आग्रह किया क्योंकि वे और दहेज देने की स्थिति में नहीं थे। यद्यपि उसे वैवाहिक घर में रहने की अनुमति दी गयी फिर भी

दुलार से भी स्नेह दिखाने के बजाय, उस पर तानों और उपहास की बौछार की गयी। दिनांक 27.07.1998 को लगभग शाम 6 बजे चिंतित पिता सुखदेव सिंह और भाई मृत्तका का हालचाल पूछने उसके घर गये और देखा कि उसका शव घर के आंगन में रखा हुआ है। उनहें यकीन हो गया कि पति और उसके रिष्तेदारों द्वारा उसके साथ की गयी क्रूरता के कारण उसने आत्महया कर ली है और तदनुसार, जोगा पुलिस स्टेषन में एक प्राथमिकी दर्ज की गयी। आपराधिक कानून लागू होने के बाद जांच अधिकारी ने जांच की और तीन सदस्यों वाले डॉक्टरों के बोर्ड से शव का पोस्टमार्टम कराया। शव का पोस्टमार्टम करने वाले डॉक्टरों ने विसरा को रासायनिक जांच के लिये भेजा और अंततः अपनी राय दी कि मृत्तका की मृत्यु का कारण कीटनाषकों के एक समूह ऑर्गेना फॉस्फोरस का सेवन था, जो मृत्तका के विसरा और खून में पाया गया। जांच एजेंसी ने गवाहों की जांच करने और अन्य औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद सक्षम न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र पेष किया गया और अनुसंधान के दौरान अपीलकर्ता को दो अन्य आरोपियों माता मोहिंदर कौर और भाई अजायब सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें आईपीसी की धारा 304-बी के तहत दण्डनीय अपराध के लिये मुकदमें के लिये भेजा गया।

4. आरोपी व्यक्तियों ने आरोप को अस्वीकार कर मुकदमा चलाये जाने का दावा किया। आरोपों को सही साबित करने के लिये अभियोजन पक्ष ने गुरलाब सिंह, पीडब्ल्यू-1, मृत्तका के भाई सुखदेव सिंह, पीडब्ल्यू-4,

मृत्तका के पिता और पीडब्ल्यू-5 के नंबरदार से परीक्षण किया। डॉ. राजिंदर कुमार गर्ग, पीडब्ल्यू-2, डॉ. विजय सिधाना, पीडब्ल्यू-3 और डॉ. आषा किरण, जिन्होंनें मृत्तक के शव का पोस्टमार्टम किया था, मौत के कारण का समर्थन करने के लिये परीक्षण किया गया। इसके अलावा, अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने के लिये कुछ अन्य औपचारिक गवाहों और जांच अधिकारी को परीक्षित किया गया।

5. अभियुक्तों ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत अपने बयानों में सभी दोषारोपित परिस्थितियों से इन्कार किया और यह स्पष्टीकरण दिया कि मृत्तका शादी के बाद से मानसिक अवसाद से पीड़ित थी क्योंकि वह गर्भधारण नहीं कर सकती थी और इसके बाद उसे दौरे भी पड़ने लगे। घटना की तारीख को, उसे दौरा पड़ा और उसे अस्पताल ले जाया गया, लेकिन रास्ते में ही उसने अंतिम सांस ली और तदनुसार, उसके शरीर को घर वापस लाया गया। अभियुक्तों का यह भी कहना था कि मृत्तका के माता-पिता को सूचित किया गया था और उनके दबाव में पुलिस को मामला दर्ज करने के लिये मजबूर होना पड़ा। बचाव में रूख को पुष्ट करने के लिये इसने डॉ. राजिंदर अरोड़ा, डीडब्ल्यू-1 और डॉ. जे. एस. सहित नो गवाहों को परीक्षित कराया। ढ़िल्लों, डीडब्ल्यू-6 जिन्होंने जैसा कि कहा गया था, मृत्तका की मानसिक बीमारी का ईलाज किया था। मृत्तका के व्यवहार करने के तरीके को स्थापित करने के लिये अन्य गवाहों को भी परीक्षित कराया गया।

6. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीष के निर्णय और आदेष दिनांक 27.11.2001 ने सभी आरोपियों को आईपीसी की धारा 304-बी के तहत दोषी ठहराया और उनमें से प्रत्येक को सात साल के कठोर कारावास और प्रत्येक को 10,000/- रूपये का जुर्माना भरने की सजा सुनायी। जुर्माना ना देने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतना होगा।

7. इससे असंतुष्ट होकर दोषियों ने आपराधिक अपील संख्या 1472/2001 एस.बी. प्रस्तुत की और सूचनाकर्ता ने सजा बढ़ाने की मांग करते हुये आपराधिक पुर्नरीक्षण संख्या 1807/2002 को प्रस्तुत की। उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता नम्बर-3 मोहिंदर कौर, सास की मृत्यु हो गयी। उच्च न्यायालय ने बचाव पक्ष की इस दलील को खारिज कर दिया कि मृत्तका किसी अवसाद या मानसिक बीमारी से पीड़ित थी। सबूतों की विवेचना करते हुये यह निष्कर्ष निकाला कि मृत्तका ने जहर खाकर आत्महत्या की थी और इसीलिये मौत सामान्य परिस्थितियों से अलग थी और मृत्तका के साथ उसकी मृत्यु से ठीक पहले दहेज की मांग के संबंध में क्रूरता की गयी थी और अभियोजन पक्ष द्वारा उक्त पहलू को संदेह से परे स्थापित किया गया था और गुरलाब सिंह, पीडब्ल्यू-1, सुखदेव सिंह, पीडब्ल्यू-4, संतोख सिंह, पीडब्ल्यू-5 की गवाही लगातार जिरह के बावजूद स्थिर रही। घटना के समय पति का भाई अजायब सिंह एक युवा लड़का था जो दसवीं कक्षा में पड़ रहा था और इसीलिये यह नहीं कहा जा सकता कि किसी भी प्रकार की दहेज की मांग

या वह उसकी भाभी के साथ क्रूरता के साथ व्यवहार में शामिल हो सकता है। इस दृष्टिकोण के चलते, उच्च न्यायालय ने अजायब सिंह को बरी कर दिया लेकिन जहां तक पति का सवाल था, उसके जुर्माने की राषि को रद्द करते हुये सजा को संषोधित कर दिया। उपरोक्त राय के परिणामस्वरूप, अपील को आंषिक रूप से अनुमति दी गयी और सूचनाकर्ता की रिविजन याचिका को खारिज किया गया।

8. हमने अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री अभय कुमार और प्रतिवादी राज्य के विद्वान वकील श्री वी. मधुकर को सुना।

9. दोषसिद्धि की पुष्टि पर आपत्ति करते हुये, अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन यह साबित करने में सक्षम नहीं है कि दहेज की कोई मांग की गयी है या ऐसी मांग के संबंध में कोई यातना दी गयी है और इसीलिये आईपीसी की धारा 304-बी के तहत दोषसिद्धि पति के खिलाफ पुष्ट नहीं की जा सकती। उनके द्वारा आग्रह किया गया है कि धारा 304-बी आईपीसी के मुख्य तत्वों को प्रस्तुत नहीं किया गया है क्योंकि अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में विफल रहा है कि मृत्तका की मृत्यु के तुरंत पहले, वह अपने पति और उसके रिष्तेदारों के द्वारा क्रूरता और उत्पीड़न का षिकार हुयी थी और दहेज की मांग को लेकर उत्पीड़न किया गया था। उनका आगे यह कहना है कि अपीलीय अदालत के रूप में उच्च न्यायालय ने साक्ष्यों की उचित परिप्रेक्ष्य

में जांच नहीं की है और यह निष्कर्ष निकाला है कि दहेज की मांग की गयी थी इसीलिये दोषसिद्धि के फैसले को उलटने की जरूरत है।

10. राज्य-प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री वी. मधुकर ने उपरोक्त दलीलों का विरोध करते हुये तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्यों का विवेचन और उच्च न्यायालय द्वारा बारीकी से पुर्नमूल्यांकन कर समान रूप से दोषसिद्धि किया गया है और इसमें हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य नहीं है। वैकल्पिक रूप से, यह उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि धारा 304-बी आईपीसी के अपराध के लिये अभिलेख पर सामग्री नहीं है फिर भी धारा 306 आईपीसी में दोषसिद्धि इस न्यायालय को सजा की मात्रा के साथ में हस्तक्षेप करने के लिये बाध्य नहीं करेगी।

11. बार की ओर से दिये गये विरोधाभासी तर्को की विवेचना करने के लिये, हम आईपीसी धारा 304-बी का उल्लेख करना उचित समझते हैं जो दहेज हत्या से संबंधित है। इसे इस प्रकार पढ़ा जाता हैः-

304-बी. दहेज मृत्यु - (1)जहां किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्षित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिये, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी, या उसे तंग किया था वहां ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु' कहा

जायेगा ओर ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जायेगा।

स्पष्टीकरणः इस उपधारा के प्रयोजन के लिये 'दहेज' का वही अर्थ होगा जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है।

(2) जो कोई भी दहेज मृत्यु कारित करेगा वह कारावास से जिसकी अवधि सात वर्ष से कम नहीं होगी किन्तु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा।

12. उक्त प्रावधान को आकर्षित करने के लिये, कुछ तत्वों को साबित करना होता है। उक्त प्रावधान की जांच करते हुये, इस न्यायालय ने सतवीर सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य में इस प्रकार कहा हैः-

> "धारा 304-बी के आवष्यक घटक हैः (1) शादी के 7 साल के भीतर, सामान्य परिस्थितियों के अलावा किसी अन्य स्थिति में होने वाली महिला की मृत्यु। (2) उसकी मृत्यु से तुरंत पहले उसे दहेज की मांग के संबंध में क्रूरता और उत्पीड़न का षिकार होना चाहिये। जब उपरोक्त सामग्री पूरी हो जाती है, तो पति या उसके रिष्तेदार, जिसने उसके साथ ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न किया, को धारा 304 बी के तहत अपराध का दोषी माना जा सकता है। पहले घटक के

अंतर्गत होने के लिये प्रावधान निर्धारित करता है कि ‘‘जहां एक महिला की मृत्यु किसी जलने या शारीरिक चोट के कारण होती है या सामान्य परिस्थितियों के अलावा अन्यथा होती है’’। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व भाग जिसे ‘‘जलने या शारीरिक चोट के कारण मौत’’ शब्दों द्वारा वर्णित किया गया है, एक अतिरिक्तता है क्योंकि ऐसी मृत्यु भी ‘‘सामान्य परिस्थितियों के अलावा अन्यथा हुयी ‘‘मृत्यु’’ के व्यापक दायरे में आती है। पूर्व भाग को इस बात पर प्रकाष डालने के लिये डाला गया था कि किसी भी तरह से जलने या शारीरिक चोट के कारण होने वाली मौत को अपराध के दायरे से बाहर नहीं माना जाना चाहिये।’’

13. इस संबंध में साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113-ए का उल्लेख करना उचित है। उक्त प्रावधान नीचे दिया गया हैः-

113 ए- किसी विवाहित स्त्री द्वारा आत्महत्या के दुष्प्रेरण के बारे में उपधारणा- जब प्रष्न यह है किसी स्त्री द्वारा आत्महत्या का करना उसके पति या उसे पति के किसी नातेदार द्वारा दुष्प्रेरित किया गया है और यह दर्षित किया गया है कि उसने अपने विवाह की तारीख से सात वर्ष की अवधि के भीतर आत्महत्या की थी और यह कि उसके पति या उसके पति के ऐसे नातेदार ने उसके प्रति क्रूरता की थी, तो न्यायालय मामले की सभी

अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये यह उपधारणा कर सकेगा कि ऐसी आत्महत्या उसके पति या उसके पति के ऐसे नातेदार द्वारा दुष्प्रेरित की गयी थी।

14. धारा 113-बी, जो दहेज हत्या के बारे में उपधारणा का प्रावधान करती है, दहेज मृत्यु की महामारी से लड़नें की दृष्टि से जोड़ी गयी थी। उक्त प्रावधान इस प्रकार हैः-

> "113 बी"- दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा-जब प्रष्न यह है कि किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री की दहेज मृत्यु के कुछ पूर्व ऐसे व्यक्ति की किसी मांग के लिये या उसके संबंध में उस स्त्री के साथ क्रूरता की थी या उसको तंग किया था, तो न्यायालय यह उपधारण करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी।
>
> स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजन के लिये दहेज मृत्यु का वहीं अर्थ है, जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 304-ख में है।"

15. धारा 304-बी आईपीसी के साथ उपरोक्त प्रावधानों की व्याख्या करते हुये, इस न्यायालय ने हीरालाल और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी सरकार) दिल्ली में इस प्रकार व्यक्त किया हैः-

"साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी और धारा 304-बी को एकसाथ पढ़े जाने से यह दर्षित होता है कि उसकी मृत्यु से ठीक पहले पीड़िता के साथ क्रूरता या उत्पीड़न किया गया था, ऐसी तात्विक साक्ष्य होनी आवष्यक है। अभियोजन पक्ष को प्राकृतिक या आकस्मिक मौत की संभावना को खारिज करना होगा ताकि इसे "सामान्य परिस्थितियों के अलावा अन्यथा होने वाली मौत" के दायरे में लाया जा सके। अभिव्यक्ति "तुरंत पहले" बहुत प्रासंगिक है जहां साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी और आईपीसी की धारा 304-बी को लागू किया जाता है। अभियोजन पक्ष यह दिखाने के लिये बाध्य है कि घटना से ठीक पहले क्रूरता या उत्पीड़न हुआ था और केवल उस मामले में ही उपधारणा लागू होती है। उसके अनुसरण में ही अभियोजन द्वारा साक्ष्य को प्रस्तुत किया जायेगा।"

विद्वान न्यायाधीषों ने आगे और "ठीक पहले" अभिव्यक्ति की व्याख्या करते हुये इस प्रकार राय दीः

"उस अवधि का निर्धारण जो "ठीक पहले" शब्द के भीतर आ सकता है, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, अदालतों द्वारा निर्धारित किया जाता है।

हालांकि, यह इंगित करने के लिये पर्याप्त है कि अभिव्यक्ति "ठीक पहले" का सामान्य अर्थ होगा संबंधित क्रूरता या उत्पीड़न और संबंधित मृत्यु के बीच अधिक अंतराल नहीं होना चाहिये। दहेज की मांग पर आधारित क्रूरता के प्रभाव और संबंधित मृत्यु के बीच एक निकटतम और जीवंत संबंध का अस्तित्व होना चाहिये। यदि क्रूरता की कथित घटना का समय अधिक दूर है और इतना पुराना हो गया है कि संबंधित व्यक्ति के मानसिक संतुलन को परेषान न करें तब इसका कोई परिणाम नहीं होगा।"

16. उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुये, यह देखा जाना चाहिये कि क्या मृत्तका को दहेज की मांग के संबंध में किये गये उत्पीड़न के कारण आत्महत्या करने के लिये उत्प्रेरित किया गया था। विद्वान विचारण न्यायाधीष के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने भाई, पीडब्ल्यू-1, पिता पीडब्ल्यू-4 और गांव के नंबरदार पीडब्ल्यू-5 के साक्ष्य को स्वीकार कर लिया है कि दहेज की मांग की गयी थी। अपीलकर्ता के विद्वान वकील का कहना था कि इस मामले में दर्ज निष्कर्ष अभिलेख पर मौजूद सामग्री पर आधारित नहीं है बल्कि अनुमानों पर आधारित है। उक्त निवेदन को स्वीकार करने की परीक्षा हेतु पीडब्ल्यू-1,4 और 5 के साक्ष्य की जांच करना उचित है। पीडब्ल्यू-1, मृत्तका के भाई ने केवल यह स्पष्ट बयान दिया है कि आरोपी व्यक्ति दहेज से संतुष्ट नहीं थे और उसकी बहन से

50 हजार रूपये लाने को कह रहे थे। पीडब्ल्यू-4 और 5 की गवाही भी ऐसी ही है। उसके अलावा, गवाहों द्वारा कुछ भी नहीं कहा गया है। पिता की ओर से कहा गया है कि मृत्तक ने दो-तीन पत्र लिखकर दहेज की मांग की गयी, इस बारे में बताया था लेकिन उक्त पत्र साक्ष्य में नहीं लाये गये। इसके अलावा, भाई, पीडब्ल्यू-1 ने जिरह में इसका खंडन किया। यह भी ध्यान देने योग्य है कि पीडब्ल्यू-4 ने अपनी अन्य बेटियों को दहेज की मांग के बारे में नहीं बताया था जो एक पिता से अपेक्षित है। इस प्रकार, इस तरह के अधूरे सबूतों के आधार पर, हमारी सुविचारित राय में, इस निष्कर्ष से सहमत होना मुष्किल है कि आरोपी पति द्वारा दहेज की मांग की गयी थी और उत्पीड़न ऐसी मांग से संबंधित था।

इस स्तर पर निष्कर्ष, हम सोचने के लिये इच्छुक हैं, कुछ पूर्वाग्रह पर आधारित है। जब ऐसा कोई निष्कर्ष निकलता है जो स्पष्टतः गलत है और रिकॉर्ड पर दर्ज साक्ष्यों द्वारा समर्थित नहीं है, कहने की जरूरत नहीं है, यह न्यायालय, संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुये, पूर्नमूल्यांकन कर सकता है और हस्तक्षेप कर सकता है। ऐसा अलामेलु बनाम राज्य, हेंज इंडिया (पी) लिमिटेड बनाम यूपी राज्य और विष्वनाथ अग्रवाल बनाम सरला विष्वनाथ अग्रवाल में कहा गया है।

17. वर्तमान में हम धारा 498-ए के तहत वर्णित क्रूरता के दूसरे भाग पर ध्यान केन्द्रित करेंगे। धारा 498-ए किसी महिला के पति या पति

के रिष्तेदार द्वारा उसके साथ क्रूरता करने से संबंधित है। स्पष्टीकरण सहित उक्त प्रावधान इस प्रकार हैः-

498 ए-किसी स्त्री के पति या पति के नातेदार द्वारा उसके प्रति क्रूरता करना-जो कोई, किसी स्त्री का पति या पति का नातेदार होते हुये, ऐसी स्त्री के प्रति क्रूरता करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

स्पष्टीकरणः इस धारा के प्रयोजनों के लिये ‘‘क्रूरता’’ से निम्नलिखित अभिप्रेत हैः-

जानबूझकर किया गया आचरण जो ऐसी प्रकृति का है जिससे उस स्त्री को आत्महत्या करने के लिये प्रेरित करने क या उस स्त्री के जीवन, अंग या स्वास्थ्य को (जो चाहे मानसिक हो या शारीरिक) गंभीर क्षति या खतरा कारित करने की संभावना है, या

किसी स्त्री को इस दृष्टि से तंग करना कि उसको या उसके किसी नातेदार को किसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति की कोई मांग पूरी करने के लिये प्रपीड़ित किया जाये या किसी स्त्री को इस कारण तंग करना कि उसका कोई नातेदार ऐसी मांग पूरी करने में असफल रहा है।

18. उपरोक्त प्रावधान के स्पष्टीकरण का खण्ड (ए) ‘‘क्रूरता’’ को परिभाषित करता है जिसका अर्थ है ‘‘कोई भी जानबूझकर किया गया आचरण जो ऐसी प्रकृति का हो जो महिला को आत्महत्या करने के लिये प्रेरित कर सकता है‘‘। स्पष्टीकरण का खण्ड (बी) गैरकानूनी मांग से संबंधित है। खण्ड (ए) के दायरे में मानसिक क्रूरता को भी रखा जा सकता है। साक्ष्यों में यह बात सामने आयी है कि सास और पति ने दुर्व्यवहार किया था। दुल्हन की उम्र लगभग 20 वर्ष की थी। कुछ अवसरों पर उसे वैवाहिक घर से बाहर कर दिया गया। यह पहलू संहेद से परे स्थापित हो चुका है। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि पारिवारिक जीवन में मतभेद, झगड़े, गलतफहमियां और आषंकायें हो सकती हैं लेकिन यह स्तर ही है जो इसे मानसिक क्रूरता के स्तर तक ले जाता है। बहू के साथ परिवार के एक सदस्य के रूप में गर्मजोषी और स्नेह के साथ व्यवहार किया जाना चाहिये, न कि घृणित और अपमानजनक, उदासीनता के साथ एक अजनबी के रूप में। उसके साथ घरेलू नौकरानी जैसा व्यवहार नहीं किया जाना चाहिये। ऐसा कोई आभास नहीं दिया जाना चाहिये कि उसे किसी भी समय उसके वैवाहिक घर से बाहर निकाला जा सकता है। मौजूदा मामले में, अभियोजन पक्ष के गवाहों के सबूतों पर विचार करते हुये, हम यह सोचते हैं कि यह एक ऐसा मामला है जहां वधू के साथ पूरी तरह से असंवेदनषील व्यवहार किया गया और उसे परेषान किया गया। ऐसा नहीं है कि उसने गलती से जहर पी लिया हो बल्कि उसने जानबूझकर अपनी

जिंदगी खत्म कर ली थी। बचाव पक्ष ने यह साबित करने की कोषिष की थी कि वह अवसाद से पीड़ित थी और इसी अवसाद के कारण उसने आत्महत्या की। बचाव पक्ष द्वारा उद्धृत डॉक्टरों की गवाही को विचारण न्यायालय के साथ साथ उच्च न्यायालय ने भी स्वीकार नहीं किया। वे रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री लाने में सक्षम नहीं हुये कि वह ऐसे अवसाद से पीड़ित थी जो उसे आत्महत्या करने के लिये मजबूर कर सकता था। उक्त गवाहों के साक्ष्यों पर गौर करने पर, इस स्तर पर निकाला गया निष्कर्ष बिल्कुल त्रुटिहीन है। उसी के मद्देनजर रिकॉर्ड पर लाये गये सबूत कि वधू के साथ क्रूरता का व्यवहार किया गया और उसे परेषान किया गया, उसे विष्वसनीयता दी जानी चाहिये और तदनुसार हम ऐसा करते हैं।

19. इसमें कोई विवाद नहीं है कि आईपीसी की धारा 306 के तहत अपराध के लिये कोई आरोप तय नहीं किया गया था। हालांकि जो प्रष्न सीआरपीसी की धारा 313 के तहत रखा गया है, उससे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अभियुक्तों को पता था कि वे आईपीसी की धारा 304-बी के तहत आरोप का सामना कर रहे थे, जो जहर देने से नहीं बल्कि जहर के सेवन से संबंधित था। दहेज की मांग और प्रताड़ना के कारण मौत जो धारा 498-ए आईपीसी के खंड (ए) के संदर्भ में दुल्हन को आत्महत्या के लिये उकसाने से संबंधित है, आईपीसी की धारा 306 की तुलना में यह बड़ा अपराध है। परीक्षण यह है कि क्या न्याय में विफलता हुयी है या अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है। गुरबचन सिंह बनाम पंजाब

राज्य में, इस न्यायालय में पूर्वाग्रह के प्रष्न की जांच की और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया-

> "पूर्वाग्रह के किसी प्रष्न को अपराध के रूप में देखते समय, अदालतों को व्यापक दृष्टिकोण के साथ काम करना चाहिये और तत्वों को देखना चाहिये न कि तकनीकीयों को, और उनका मुख्य विषय यह देखना होना चाहिये कि क्या अभियुक्त का निष्पक्ष विचारण हुआ था, क्या वह जानता था कि उसका विचारण क्यों किया जा रहा है, क्या उसके खिलाफ स्थापित किये जाने वाले मुख्य तथ्यों को उसे निष्पक्ष और स्पष्ट रूप से समझाया गया था और क्या उसे खुद का बचाव करने का पूरा और निष्पक्ष मौका दिया गया था।"

20. शमन साहेब एम. मुल्तानी बनाम कर्नाटका राज्य में, तीन न्यायाधीष वाली पीठ ने 'न्याय की विफलता' की अवधारणा के संदर्भ में यह राय दी हैः-

> 23. हम अक्सर "न्याय की विफलता" के बारे में सुनते हैं और अक्सर आपराधिक अदालत में उक्त अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया जाता है। शायद यह बहुत ही लचीली या आसान अभिव्यक्ति है, जिसे किसी मामले की किसी भी स्थिति में प्रयोग में लाया जा सकता है। अभिव्यक्ति

"न्याय की विफलता" कभी-कभी इटिमोलॉजिकल कैमलिन (उपमा टाउन इन्वेस्टमेंटस लिमिटेड बनाम प्र्यावरण विभाग में लॉर्ड डिप्लॉक से ली गयी है) के रूप में प्रकट होती है। आपराधिक अदालत, विषेष रूप से वरिष्ठ अदालत को यह पता लगाना कि क्या वास्तव में न्याय की विफलता थी या यह केवल दिखावा है इसकी बारीकी से जांच करनी चाहिये।

24. प्राकृतिक न्याय के प्रमुख सिद्धांतों में से एक यह है कि किसी भी व्यक्ति की बात सुनें बिना उसकी निंदा नहीं की जानी चाहिये (ऑडी अल्टरम पार्टेम)। लेकिन कानून की रिपोर्टें ऐसे उदाहरणों से भरी पड़ी हैं जब अदालतें इस तर्क को स्वीकार करने में झिझकती हैं कि न्याय की विफलता केवल इसीलिये हुयी क्योंकि किसी व्यक्ति को किसी विसेस पहलू पर नहीं सुना गया था। हालांकि, यदि पहलू इस तरह का है कि इसका स्पष्टीकरण न करने से किसी व्यक्ति को दंडित करने में योगदान हुआ है, तो अदालत को यह कहना चाहिये कि चूंकि उसे उस पहलू को समझाने का अवसर नहीं दिया गया था, इसीलिये प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के गैर-अनुपालन के कारण न्याय की विफलता हुयी।

21. नरविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य में, उच्च न्यायालय के निष्कर्ष को स्वीकार करते हुये कि अभियोजन पक्ष आईपीसी की धारा 304 बी के तहत आरोप स्थापित करने में सक्षम नहीं है और इसीलिये, इस न्यायालय ने सजा को धारा 306 आईपीसी के तहत बदल दिया था। इस

न्यायालय द्वारा यह पाया गया कि दहेज की मांग के बिना क्रूरता या उत्पीड़न पत्नी को आत्महत्या करने पर आईपीसी की धारा 306 के तहत आत्महत्या के लिये उकसाने का अपराध बनता है। न्यायालय ने आगे कहा कि केवल आरोप तय करने में चूक या त्रृटि होने से अदालत आरोपी को उस अपराध के लिये दोषी ठहराने से वंचित नहीं हो जायेगी, जो रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के आधार पर साबित पाया गया है। ऐसी परिस्थितियों में मामला सीआरपीसी की धारा 221(1) और (2) के दायरे में आयेगा।

22. के. प्रेमा. एस. राव और अन्य बनाम यडला श्रीनिवास राव और अन्य में, न्यायालय ने सबूतों का विष्लेषण करते हुये इस प्रकार फैसला सुनायाः-

> “साक्ष्य में पाये गये वही तथ्य, जो अपनी पत्नी के साथ क्रूर व्यवहार के लिये धारा 498-ए के तहत अपीलकर्ता की सजा को उचित ठहराते हैं, उसके खिलाफ आईपीसी की धारा 306 के तहत पत्नी को आत्महत्या के लिये उकसाने का मामला बनता है। अपीलकर्ता को धारा 304-बी के तहत दहेज मृत्यु के उच्च डिग्री का अपराध, जिसमें न्यूनतम सात साल के कठोर कारावास और अधिकतम में आजीवन कारावास की सजा हो सकती है, के लिये आरोपित किया गया था। साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ए के तहत भी

उसके खिलाफ धारा 498ए आईपीसी के तहत क्रूरता के अपराध के समान तथ्यों पर उपधारणा की जा सकती है। अपीलकर्ता को बचाव का कोई और अवसर देने की आवष्यकता नहीं है। जब उसके पास धारा 498-ए आईपीसी के तहत आरोप को पूरा करने का पर्याप्त अवसर था।"

23. वर्तमान मामले में, आईपीसी की धारा 306 के तहत अपराध के मूल तत्व अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित किये गये हैं, क्योंकि मृत्यु असामान्य परिस्थिति में सात साल के भीतर हुयी है और मृत्तका के साथ मानसिक क्रूरता की गयी थी। इस प्रकार, हम दोषसिद्धि को धारा 304-बी आईपीसी के स्थान पर धारा-306 आईपीसी के तहत परिवर्तित करते हैं। चूंकि, अभियुक्त ने लगभग पांच साल हिरासत में बिताये हैं, इसीलिये हम सजा की अवधि को पहले ही बितायी गयी अवधि तक सीमित कर देते हैं।

24. हमारे द्वारा दोषसिद्धि को संषोधित करने के बावजूद, हमें कानून को दोहराने के लिये आगे बढ़ने और जिस तरह से मुकदमा चलाया गया उस पर अपनी पीड़ा व्यक्त करने के लिये मजबूर होना पड़ा है, क्योंकि यह एक बहुत ही परेषान करने वाला परिदृष्य को दर्षाता है। जैसा कि रिकॉर्ड से पता चलता है, हस्तगत मामले में, विचारण बेहद अव्यवस्थित और खण्डों में किया गया था। गवाहों के प्रतिप्ररीक्षण को बिना किसी विषेष कारण लिखे स्थगित किया गया और लंबी पेषियां दी गयी।

ऐसा प्रतीत होता है कि विधि के आदेष और इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर व्यक्त किये गये विचारों को पूरी तरह से ताक पर रखा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्धान मुकदमें के न्यायाधीष ने अपनी स्मृति से इस बात को खारिज कर दिया है कि एक आपराधिक मुकदमें की अपनी गंभीरता और शुचिता होती है। इस संबंध में, हम तलब हाजी हुसैन बनाम मधुकर पुरषोत्तम मोंडकर और अन्य के फैसले का हवाला दे सकते हैं जिसमें कहा गया है कि एक आरोपी व्यक्ति अपने आचरण से निष्पक्ष सुनवायी को खतरे में नहीं डाल सकता है क्योंकि यह प्राथमिक और सर्वोपरि है। यह सुनिष्चित करना आपराधिक अदालतों का कर्त्तव्य है कि निष्पक्ष सुनवायी का जोखिम दूर हो जाये और मुकदमें को बिना किसी रूकावट या व्यवधान के सुचारू रूप से चलने दिया जाये।

25. कृष्णन और अन्य बनाम कृष्णावेनी और अन्य में यह देखा गया है कि आपराधिक कानून के पीछे का उद्देष्य कानून, सार्वजनिक व्यवस्था, स्थिरता के साथ साथ समाज में शांति और प्रगति बनाये रखना है। आपराधिक मुकदमें का उद्देष्य यह सुनिष्चित करना है कि गवाह की याददाष्त खत्म होने से पहले मुकदमा शीघ्र समाप्त हो जाये। कोर्ट ने आगे कहा कि हालिया चलन मुकदमें में देरी करना और गवाह को धमकाना या वादे या प्रलोभन से गवाह को जीतना है और इन कदाचारों पर अंकुष लगाने की जरूरत है।

26. स्वर्ण सिंह बनाम पंजाब राज्य में, वाधवा, जे. ने अपनी राय से एक आपराधिक मामले में मांगे गये स्थगन के संबंध में अपनी पीड़ा व्यक्त की, जो इस पर आधारित है कि साक्ष्य का एक भवन जो कानून में स्वीकार्य है और एक आपराधिक मुकदमें में गवाहों की दुर्दषा निम्नलिखित तरीके से होती है।

यह सामान्य चलन बन गया है कि किसी आपराधिक मामले को तब तक बार बार स्थगित किया जाये जब तक कि गवाह थक ना जाये और वह हार ना मान ले। यह बेईमान वकीलों का खेल है कि किसी ना किसी बहाने से स्थगन प्राप्त किया जाये जब तक कि गवाह को जीत न लिया जाये या थका ना दिया जाये। इतना ही नहीं एक गवाह को धमकाया जाता है, उसका अपहरण कर लिया जाता है, उसका उत्पीड़न किया जाता है, उसे खत्म कर दिया जाता है या रिष्वत भी दी जाती है। उसके लिये कोई सुरक्षा नहीं है। बिना किसी वैध कारण के मामले को स्थगित करने में एक अदालत अनजाने में न्याय की हत्या का पक्षकार बन जाती है।

27. वर्तमान मामले में, जैसा कि रिकॉर्ड पर लाये गये दस्तावेजों से पता चला है, पीडब्ल्यू-1 की जांच के बीच, बचाव पक्ष के विद्वान वकील ने कहा कि वह अच्छा महसूस नहीं कर रहे थे और अदालत में खड़े होने में असमर्थ थे और अदालत ने मामले को चार सप्ताह की अवधि 08.05.1999 तक के लिये स्थगित कर दिया। उक्त गवाह की जांच

स्थगित तिथि पर नहीं बल्कि 07.02.2000 को की गयी थी और उस दिन, मुख्य परीक्षा समाप्त होने के बाद, बचाव पक्ष के वकील के कहने पर जिरह को स्थगित कर दिया गया था। इसी प्रकार, जब पीडब्ल्यू-4 की जांच की गयी, तो बचाव पक्ष के विद्वान वकील द्वारा की गयी प्रार्थना पर मामला स्थगित कर दिया गया। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि पीडब्ल्यू-2 की जिरह अंततः 02.08.2000 को हुयी। मुख्य परीक्षा और जिरह की तारीखों और दिये गये स्थगनों के अवलोकन पर, यह देखने के लिये न तो सोलोमन के ज्ञान की आवष्यकता है और ना ही ऑर्गस के आंख वाली जांच की आवष्यकता है कि परीक्षण पूर्ण रूप से खण्डों में आयोजित किया गया था जैसे कि संपूर्ण विचारण अधिवक्तागण की दया का मोहताज हो। विद्वान विचारण न्यायाधीष से इसकी उम्मीद सबसे कम थी। आपराधिक न्याय की व्यवस्था विचारण न्यायालय पर कार्यवाही पर नियंत्रण रखने का भारी बोझ डालता है। इसे उचित आधार पर रखा जाना चाहिये और इसे पार्टियों या उनके वकील की सनक और इच्छा पर नहीं छोड़ा जा सकता है। एक विचारण न्यायाधीष मूकदर्षक बनकर नहीं रह सकता है जो पक्षकारों द्वारा नियंत्रित किया जा रहा हो, इसके लिये उसका यह उसका प्राथमिक कर्त्तव्य है कि मुकदमें की निगरानी करें और ऐसी निगरानी दंड प्रक्रिया संहिता के अनुरूप होनी चाहिये।

28. इस संदर्भ में, अंबिका प्रसाद ओर अन्य बनाम राज्य (दिल्ली प्रषासन, दिल्ली) मामले में निर्णय का एक उपयोगी संदर्भ दिया जा सकता

है। इस न्यायालय ने उस मामले में मुखबिर को दी गयी धमकी और बचाव पक्ष के वकील द्वारा उक्त गवाह से जिरह करने के लिये मांगे गये स्थगन पर टिप्पणी करते हुये इस प्रकार राय दीः-

इस स्तर पर हम देखेंगे कि सत्र न्यायाधीष को सीरआरपीसी की धारा 309 के आदेष का पालन करना चाहिये था, जिसमें दिन-प्रतिदिन गवाहों की जांच करके मुकदमें को पूरा करना चाहिये और आरोपी को गवाहों को धमकाने या जीतने का मौका नहीं देना चाहिये जिससे कि वे अभियोजन का समर्थन नहीं कर सके।

(बल दिया गया)

इसके बाद, न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि 06.02.1984 को पीडब्ल्यू-4 की मुख्य परीक्षा समाप्त होने के बाद, अभियुक्त का प्रतिनिधित्व करने वाले वकील ने न्यायालय से अनुरोध किया कि उसके चाचा के निधन के कारण वह गवाह से जिरह करने के लिये असमर्थ है और इस कारण आगे की जिरह स्थगित की जानी चाहिये। इसके बाद, जुलाई, 1985 के महीने में गवाह से जिरह की गयी। इस अदालत ने पाया कि यह बेहद अनुचित था और भले ही आरोपी के वकील के स्थगन के अनुरोध को स्वीकार कर लिया गया था फिर भी जिरह दो-तीन दिन से अधिक के लिये नहीं टाली जानी चाहिये थी।

29. यूपी राज्य बनाम शंभूनाथ सिंह और अन्य में न्यायालय ने पूरी तरह से जांच करने के इच्छुक गवाहों की उपस्थिति के बावजूद मामले को स्थगित करने की सेषन न्यायालय के अभ्यास की सराहना नहीं करते हुये, इस प्रकार फैसला सुनायाः-

> "हम यह बिल्कुल स्पष्ट कर देते हैं कि यदि कोई गवाह अदालत में मौजूद है तो उससे उसी दिन परीक्षण किया जाना चाहिये। अदालत को पता होना चाहिये कि अधिकांष गवाह अपने स्वयं के काम-धन्धे को छोड़ने के बाद ही भारी कीमत पर ही अदालत में उपस्थित होते हैं। निष्चित रूप से उन्हें कष्ट और आय की हानि उठानी पड़ती है। एक गवाह को अदालत द्वारा दी जाने वाली अल्प राषि का भत्ता आमतौर पर उसके द्वारा उठाये गये वित्तीय नुकसान के लिये पर्याप्त नहीं है। विचारण न्यायालय में यह एक दुर्दषा है कि गवाह जो सम्मन या अन्य प्रक्रियाओं के माध्यम से बुलाये जाते हैं, सुबह से शाम तक दरवाजे पर खड़े रहते हैं, केवल दिन के अंत में बताया जाता है कि मामला किसी और दिन के लिये स्थगित कर दिया गया है। इस प्राचीन अभ्यास को विचारण न्यायालय के पीठासीन अधिकारियों द्वारा सुधारा जाना चाहिये और यह सभी के द्वारा सुधारा

जा सकता है, बषर्ते संबंधित पीठासीन अधिकारी कर्त्तव्य के प्रति प्रतिबद्ध हो।"

30. उक्त मामले में, न्यायालय ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 309 के तहत विधायिका द्वारा निर्धारित शर्तो का उल्लेख किया, जो कार्यवाही को स्थगित करने या स्थगित करने की शक्ति से संबंधित है और यह बताने के लिये अग्रसर हुये कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 309 की पहली उप-धारा विचारण न्यायालय को आदेष देती है कि कार्यवाही शीघ्रता से की जायेगी लेकिन 'जितनी जल्दी हो सके, जितना संभव हो' शब्दों के जुड़ने में कुछ खेल प्रदान किया है और इस तरह के खेल के माध्यम से अक्सर परीक्षणों में देरी होती है। फिर भी, उप-धारा का दूसरा भाग मुकदमें के आगे के चरण में अदालत द्वारा अपनाये जाने वाले अधिक सख्त रूख की गारंटी देता है। वह चरण तब होता है जब गवाहों से पूछताछ शुरू होती है। विधायिका जिसने 'जितनी जल्दी हो सके, जितना संभव हो' शब्दों का उपयोग करके उप-धारा के प्रारंभिक भाग में निहित जनादेष की शक्ति को कम कर दिया है, उसने अगले चरण (जब गवाहों की परीक्षा शुरू हो गयी है) के लिये आवष्यकता अनुसार विकल्प चुना है। एक बार जब मामला उस स्तर पर पहुंच जाता है, तो वैधानिक आदेष यह है कि ऐसी जांच 'दिन-प्रतिदिन तब तक जारी रखी जायेगी जब तक कि उपस्थित सभी गवाहों की जांच नहीं हो जाती'। उक्त कड़े नियम का एकमात्र अपवाद यह है कि यदि अदालत को लगता है कि स्थगन 'अगले दिन से परे आवष्यक

है' तभी प्रदान किया जा सकता है जिसके लिये अदालत पर एक शर्त लगायी जाती है कि इसके कारणों को दर्ज किया जाना चाहिये। यहां तक कि जब गवाह अदालत के समक्ष उपस्थित होते हैं तो यह नरमी भी दूर कर दी जाती है। इतना कहने के बाद, न्यायालय ने माना कि ऐसी स्थितियों में, अदालत को अत्यधिक आकस्मिकता को छोड़कर मामले को स्थगित करने की कोई शक्ति नहीं दी गयी है, जिसके लिये उप-धारा (2) के दूसरे प्रावधान ने एक और शर्त लगायी है कि जब गवाह उपस्थित है, लिखित रूप में दर्ज किये जाने वाले विषेष कारणों को छोड़कर उनकी जांच किये बिना कोई स्थगन या पेषी नहीं दी जायेगी।

31. यहां यह नोट करना उचित है कि इस न्यायालय ने इस बात पर दुःख व्यक्त किया कि यह एक सामान्य प्रथा और नियमित घटना बन गयी है कि विचारण न्यायालय विधायी आदेष का उन्मुक्तता से उल्लंघन करते हैं।

32. मोहम्मद खालिद बनाम स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल, तीन न्यायाधीषों की पीठ ने गवाह की जिरह को लंबे समय तक स्थगित करने को मंजूरी नहीं दी और उक्त प्रथा की निंदा करते हुये, इस प्रकार कहा-

> "अनावश्यक स्थगन से षिकायत की गुंजाइष बनती है कि आरोपी व्यक्तियों को गवाहों से उबरने का समय मिल जाता है। इस आरोप में सच्चाई जो भी हो, तथ्य यह है कि ऐसा

स्थगन संहिता की धारा 309 की भावना के विपरीत है। जब एक गवाह उपलब्ध होता है और उसकी मुख्य परीक्षा समाप्त हो गयी है, जब तक कि बाध्यकारी कारण न हों, विचारण न्यायालय को मात्र मांगे जाने पर ही मामले को स्थगित नहीं करना चाहिये।''

33. हाल ही में, अकील उर्फ जावेद बनाम दिल्ली राज्य में, न्यायालय ने पहले के निर्णयों का अवलोकन करने के बाद प्रक्रिया के अनुपालन पर जोर दिया है और अपनी पीड़ा व्यक्त की है कि मुकदमें के विचारण में धारा 231 सपठित धारा 309 दण्ड प्रक्रिया संहिता में वर्णित प्रावधानों का सख्ती से पालन नहीं किया जा रहा है और आगे इस बात पर जोर दिया गया है कि इस तरह के अनुपालन से मामलों की त्वरित सुनवायी सुनिष्चित हो सकती है और केवल मांगे जाने पर ही अनुचित लंबे समय तक स्थगन देकर होने वाली किसी भी चाल की संभावनाओं को भी खारिज किया जा सकता है।

34. यह अदालत हस्तगत मामले में जिस प्रकार से विचारण किया गया है, उस पर अपनी पीड़ा, व्यथा और चिंता के बारे में व्यक्त करती है। हम आषा करते हैं और विष्वास करते हैं कि विचारण न्यायालय अपने मस्तिष्क में वैधानिक प्रावधानों और इस न्यायालय द्वारा उनकी की गयी व्याख्या को ध्यान में रखें-जब एक विचारण हो रहा हो तो पक्षकारों के

अधिवक्ता पर नियंत्रण किया जाना चाहिये, उन्हें मूकदर्षक नहीं बनना चाहिये-उन्हें, उनकी निगरानी की आवष्यकता है। वे अपनी जिम्मेदारी से भाग नहीं सकते। यह ध्यान में रखना चाहिये कि जमीनी स्तर पर आपराधिक न्याय की पूर्ण व्यवस्था इस बात पर निर्भर है कि विचारण कैसे किया गया है। यह कहने के लिये कोई विषेष जोर देने की आवष्यकता नहीं है कि आपराधिक न्याय का वितरण न केवल बेंच की चिंता है बल्कि बार की चिंता भी है। न्याय का प्रषासन तब अपनी शुचिता को दर्षाता है, जब बेंच और बार अपने कर्त्तव्यों को अत्यधिक ईमानदारी से करते हैं। एक वकील मामले को टालने के लिये हथकंडों का सहारा लेकर विचारण की निष्पक्षता में किसी भी तरह का अनादर नहीं कर सकता।

35. परिणामतः अपील को आंषिक रूप से अनुमति दी जाती है और अपीलकर्ता को स्वतंत्र कर दिया जाता है, यदि किसी अन्य मामले के संबंध में उसकी हिरासत की आवष्यकता नहीं है।

अपील आंषिक रूप से स्वीकार की गयी।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी नरेंद्र कुमार खत्री (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकारण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अग्रेंजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।